ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 132-134**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.- IV, Issues-38, YEAR- Oct.-Dec.2025

प्रातिशाख्यकार तथा अनुतन्त्रकार के मध्य भेद–अभेद विमर्श

विकास भारद्वाज, 2. डॉ0 नमिता निगम

शोधच्छात्र, 2. शोध निर्देशिका– संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग, (जे०एन०पी०जी०कॉलेज) लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ0प्र0) भारत

Received-11.10.2025, Revised-19.10.2025, Accepted-27.10.2025 **E-mail : aaryvart2013@gmail.com**

सारांशः ***उपरोक्त आचार्यों तथा उनके ग्रन्थों के विषय में पौर्वात्य एवं प्रातीच्य विद्वानों ने पर्याप्त विचार किया है, तदपि उन विद्वानों में परस्पर मतैक्य दृष्टव्य नहीं है। एतदर्थ प्रातिशाख्यकार कात्यायन तथा अनुतन्त्रकार कात्यायन के मध्य भेद–अभेद विमर्शन क्रम में विभिन्न विद्वानों का अनुसरण करते हुए स्वकीय मत का समुपस्थापन कर पौर्वापर्य का निर्धारण ही मेरे इस शोधपत्र का ध्येय है।***

प्रातिशाख्यकार– स्कन्दपुराण नागर खण्ड अध्याय १३०–३१ के अनुसार कात्यायन महर्षि याज्ञवल्क्य के पुत्र थे जो याज्ञवल्क्य की पत्नी कात्यायनी की सन्तान थे एवं सिद्धि समापन्नो याज्ञवल्क्यो द्विजोतमः।...जनकाय नरेन्द्राय व्याख्याय च ततः परम्। कात्यायनसुतं प्राप्य वेदसूत्रस्य कारकम् [1] ये यज्ञ विद्या विचक्षण एवं वैदिकसूत्रों के रचयिता थे। कात्यायन के वररुचि नामक एक पुत्र था। कात्यायनमिवं च यज्ञविद्याविचक्षणम् पुत्रो वररुचिर्यस्य बभूव गुणसागरः[2]

यह समग्र यज्ञविधियों में निपुण आचार्य ने यज्ञीय विषयों के अनेकानेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। उन्होंने न केवल स्वशाखागत ग्रंथ किए,अपितु अन्य शाखाओं के लिए भी विभिन्न ग्रंथ किए। एतदर्थ उनका नाम यत्र कुत्र चित् पारस्कर भी श्रोतव्य है,श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने पारस्कर नाम कात्यायन का सिद्ध किया है।'याज्ञवल्क्यस्य पुत्रः कात्यायनीस जातः कात्यायनः परासां शाखानां ग्रन्थि निर्माणकरणात् पारस्कर इति नाम्ना प्रसिद्धः।[3]

कुंजीभूत शब्द– इक्कीसवीं सदी, लोक जीवन, लोक संस्कृति, नवीनतम पीढ़ी, संस्कारगत रीति–रिवाज,मजदूर, किसान,रूढिया।

आश्वालायन कृत सर्वानुक्रमणभाष्य में भी इनका उल्लेख प्राप्य है। "एकोहि शौनकाचार्यशिष्योभगवान् कात्यायनः"[4] इन्हीं कात्यायन महर्षि ने वटनगरक्षेत्र में वास्तुपदतीर्थ तथा महागणपतिपीठ की स्थापना की थी।

अपरकथा के अनुसार याज्ञवाल्क्य की शिष्यपरम्परा में पुत्र स्वरूप दत्तःतथा कात्यायन नाम के दो ऋषि हुए। उन्होंने ही वाजसनेयप्रातिशाख्य, श्रौताग्निकर्मसाधनपद्धिति सम्बद्ध दार्शनिक सूत्र, कल्पसूत्र, अष्टादशपरिशिष्टसूत्रादि का प्रणयन किया। हरिवंश पुराण में इन्हें विश्वामित्रगोत्रीय कहा गया है:

विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादयः स्मृताः।
विख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामानि मेशृणु।
देवश्रवाः कतश्चैव यतः कात्यायनाः स्मृताः।।

ऋक् सर्वानुक्रमणी के भाष्यकार षड्गुरुशिष्य ने श्लोकात्मक अपनी भूमिका में कात्यायन को आचार्य शौनक का शिष्य एवं आश्वलायन का सतीर्थ्य बतलाया है। कात्यायन की रचनाओं में वाजिसूत्र, उपग्रन्थ, स्मृति, भ्राजमान श्लोक, ब्रह्मकारिका, पाणिनीय महावार्तिक एवं सर्वानुक्रमणी का उल्लेख किया है।

प्रतिज्ञा परिशिष्ट में भाष्यकार अनन्तदेवयाज्ञिक ने कात्यायन को कल्पसूत्र एवं १८ परिशिष्ट ग्रन्थों के रचनाकार रूप से उल्लेख किया है।कल्पानष्टादशपरिशिष्टानि च प्रणीतवतो भगवतः कात्यायनस्य।[5]

वृतजातसमुच्चय नामक प्राकृत छन्दोग्रन्थ के टीकाकार चक्रपाल पुत्र गोपाल ने प्रारम्भ में छन्दः शास्त्र के रचयिताओं में पिङ्गलादि की भाँति कात्यायन को भी नमस्कार किया है।

अनुतन्त्रकार– त्रिकाण्डशेषकोश के रचयिता पुरुषोत्तम देव के अनुसार कात्यायन के पाँच नाम मेधाजित, कात्य, कात्यायन, पुनर्वसु और वररूचि है।

"मेधावी वाथ मेधाजित्कात्यः कात्यायनश्च सः।
पुनर्वसुर्वररुचिर्गोर्नदीयः पतञ्जलिः[6]।

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने भी कात्य, कात्यायन और वररूचि नामों का उल्लेख किया है। 'प्रोवाच भगवान् कात्यस्तेनासिद्धिर्यगस्तुते।[7] कथासरित्सागर में श्रुतधर नाम भी वररूचि कात्यायन के लिये प्रयुक्त हुआ है। एष श्रुतधरो जातो विद्यां वर्षादवाप्स्यति।[8]

हेमचन्द्र के कोश में मेधाजित, वररूचि और पुनर्वसु नाम कात्यायन के ही बतलाये गये हैं। कात्यायनो वररूचिर्मेधाजिच्च पुनर्वसुः'[9]

स्कन्दगुप्त ने अपने श्रीकृष्णचरित काव्य के प्रारम्भ में लिखा है कि वररूचि कात्यायन ने पाणिनीय व्याकरण को अपनी रचना वार्तिक से जिस प्रकार पुष्ट किया उसी प्रकार स्वर्गारोहण काव्य की रचना कविकर्म की कुशलता भी बतलाई है।

यः स्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गमानीतवान्भुवि।
भाव्येन रुचिरेणैव ख्यातो वररुचिः कविः।

न केवलं व्याकरणं पुपोष दाक्षीसुतस्येरित वार्तिकेयः। काव्योऽपि भूयोऽनुचकार तन्वै व्याकरणो सो कवि कर्म दक्षः।

पाश्चात्याभिमत– आचार्यों के विषय में मैक्समूलर बेवर तथा गोल्डस्टुकर आदि अनेक पाश्चात्यों ने भी स्वमत का उपस्थापन किया है, उक्त तीनों विद्वान् समुपलब्ध प्रमाणों के आश्रित्य विभिन्न निष्कर्षों पर पहुँचे है। सर्वप्रथम मैक्समूलर ने कात्यायन सम्बन्धी विचारों की आधार शिला रखी। मैक्समूलर का मत कथासरित्सागर के रचयिता सोमदेव के लेख पर आधारित है। उनका निष्कर्ष है कि गुरु शिष्य की ५ पीढ़ी थी शौनक, आश्वलायन, कात्यायन, पतञ्जलि और व्यास। कात्यायन एवं वररुचि एक ही व्यक्ति थे तथा वररुचि कात्यायन पाणिनि के समकालीन थे, किन्तु सभी प्रातिशाख्य पाणिनी अष्टाध्यायी से पूर्व लिखे गए है।[10] मैक्समूलर के अनुसार रचनाओं का क्रम इस प्रकार है:

अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.- IV, Issues-38, YEAR- Oct.-Dec.2025

(१) कात्यायन प्रातिशाख्य (२) पाणिनीय व्याकरण (३) कात्यायनीय–वार्त्तिक। मैक्समूलर ने कथासरित्सागर की कथा के आधार पर कात्यायन को ई० पू० चतुर्थ शताब्दी के उत्तरार्ध अर्थात् ३५० ई० पू० का सिद्ध किया है।[11]

आटो बोथलिङ्ग के अनुसार भी कात्यायन का समय ई० पू० चतुर्थ शताब्दी का मध्य है। राजतरंगिणी के एक सन्दर्भ के अनुसार राजा अभिमन्यु ने चन्द्र एवं अन्य वैयाकरणों को पतञ्जलि महाभाष्य को कश्मीर देश में पढ़ाने का आदेश दिया था। आटोबोथलिङ्ग का अनुमान है कि राजा अभिमन्यु का काल ई० पू० १०० वर्ष है। और इस सूत्र से उन्होंने पाणिनि का काल ई० पू० ३५० वर्ष निर्धारित किया है।[12] एतद् क्रमानुसार भी कात्यायन ई० पू० चतुर्थ शताब्दी के मध्य में आते हैं। लसेन द्वारा उपर्युक्त मत का खण्डन किया गया। इनके अनुसार पाणिनि ई० पू० द्वितीय शताब्दी के लगभग के स्थिर होते हैं।[13] वेबर और मैक्डानल के दृष्टिकोण के विरुद्ध दो भिन्न–भिन्न कात्यायन माने हैं।[14] किन्तु दोनों ही इस बात में मैक्समूलर से सहमत है कि वाजसनेयप्रातिशाख्य पाणिनि पूर्व की रचना है। मैक्डालन के अनुसार एक कात्यायन परिशिष्ट ग्रन्थों एवं वाजसनेयप्रातिशाख्य के रचयिता थे तथा दूसरे कात्यायन पाणिनि व्याकरण के वार्त्तिककार थे। उनका तर्क है कि कुछ वैदिक भाषा की विशेषताएं एवं उसके रूप जो कि पाणिनि व्याकरण से सिद्ध नहीं हैं, वे परिशिष्ट ग्रन्थों में प्राप्त होते है।

गोल्डस्टुकर का मत है कि वाजसनेयप्रातिशाख्य के रचयिता एवं वार्त्तिककार कात्यायन एक ही है। उनके अनुसार कात्यायन ने पहले महावार्त्तिक लिखा एवं तदनन्तर वा० प्रा० की रचना की। गोल्डस्टुकर का कथन है कि वैदिक भाषा पर पाणिनि के विधान अपूर्ण थे और कात्यायन द्वारा उनकी न्यूनतापूर्ति प्रातिशाख्य में की गयी। इस प्रकार पाणिनि द्वारा परित्यक्त तथ्यों की पूर्ति हेतु सूत्ररूप में उन नियमों का कथन अपने प्रातिशाख्य में कात्यायन ने किया और इसी तरह के उद्देश्य से उन्होंने अपना वार्त्तिक भी लिखा।[15] इस प्रकार गोल्डस्टुकर एक कात्यायन मानने में तो मैक्समूलर से सहमत हैं, किन्तु सभी प्रातिशाख्यों को पाणिनि व्याकरण से परवर्ती मानकर उन्होंने मैक्समूलर और वेबर के मत का खण्डन ही नहीं किया अपितु रॉथ, बर्नेल और लाइबिच के मत से भी असहमति प्रदर्शित की। राथ ने प्रातिशाख्यों को पाणिनि व्याकरण का मार्गदर्शक अग्रगामी आदर्श उदाहरण के रूप में माना है।[16] बर्नेल का भी मत है कि वा०प्रा० पाणिनिय व्याकरण से पूर्व का है।

निष्कर्ष– परिभाषा, स्वर तथा संस्कार इन तीनों विषयों का विस्तृत विवेचन जिस प्रकार प्रातिशाख्य में प्राप्त होता है उसी के लिए 'स्वर–संस्कार–प्रतिष्ठापयिता' की उपाधि आचार्य की विशिष्टता को लक्ष्य कर दी गई है,प्रातिशाख्य कर्ता कात्यायन को अष्टाध्यायी अनुतन्त्रकार कात्यायन से अभिन्न स्वीकृत करना समुचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि प्रातिशाख्यकार कात्यायन के सूत्रस्थपदों में अनेक वैदिक विशिष्टताऐं एवं अनेक अपाणिनीय पदों का भी प्रयोग प्राप्त होता है। वाजसनेयप्रातिशाख्य तथा अष्टाध्यायी में अनेक पारिभाषिक शब्द समान हैं तथा अनेक सूत्र ऐसे हैं जो कि दोनों ग्रन्थों में समान रूप में मिलते हैं।

यदि प्रातिशाख्यकार कात्यायन एवं अनुतन्त्रकार कात्यायन एक ही व्यक्ति होते तो वे स्वयं के द्वारा लिखे गये (जो सूत्र दोनों ग्रन्थों में समान हैं) प्रातिशाख्य के सूत्रों पर भी वार्तिकों की रचना अवश्य करते। इसके अतिरिक्त कात्यायन तथा पाणिनि के ग्रन्थों का अध्ययन करके पाणिनि की रचनाशैली की प्रौढ़ता, उनकी परिभाषाओं एवं संज्ञाओं की एकरूपता तथा कात्यायन की शैली की अप्रौढ़ता एवं अव्यवस्था का अवलोकन करके हम इसी निर्णय पर पहुँच सकते हैं कि पाणिनि ने अपने ग्रन्थ की रचना उस समय की जब व्याकरण साहित्य में सूत्रशैली पूर्णरूपेण विकसित हो चुकी थी। इसके विपरीत कात्यायन प्रणीत प्रातिशाख्यग्रन्थ के रचनाकाल में व्याकरण साहित्य में सूत्रशैली अपनी शैशवावस्था में विद्यमान रही होगी। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि पाणिनि ने ही इन पारिभाषिक शब्दों तथा सूत्रों को प्रातिशाख्य से ग्रहण किया है। अतः प्रातिशाख्यकार कात्यायन पाणिनि से प्राचीनतर हैं।

'वेदार्थदीपिका में षड्गुरुशिष्य द्योतित करते हैं कि आश्वलायन की भाँति कात्यायन भी शौनक के शिष्य थे। शौनक ने स्वयं दश ग्रन्थों की रचना कर अपने शिष्यों आश्वलायन तथा कात्यायन के द्वारा अनेक ग्रन्थों की रचना करा वेदों का जो उद्धार किया है, उसके लिए समग्र जगत शौनक का ऋणी रहेगा।[17]

"युधिष्ठिर मीमांसक के मत में कात्यायन का तात्पर्य शुक्लयजुर्वेदीय, आङ्गिरस शाखा के प्रवर्तक कात्यायन पुत्र एवं याज्ञवल्क्य के पौत्र वररूचि ही कात्यायन है, जो वि. पू. 2700 श० के थे, परन्तु अन्य विद्वान् इनको 400–300 ई. पू. के मध्य मानते हैं।"

डॉ. वीरेन्द्रकुमार वर्मा ने प्रातिशाख्यकार कात्यायन का समय लगभग 600 ई.पू. स्वीकार किया है, जबकि पाणिनि का समय अधिकतर विद्वानों के अनुसार 500 ई. पू. है। इस प्रकार कात्यायन पाणिनि से पूर्ववर्ती आचार्य हैं, एवं 'वाजसनेयि प्रातिशाख्य' की रचना भी अष्टाध्यायी से पूर्व हो चुकी थी।

इसके अतिरिक्त पाणिनि की अष्टाध्यायी पर वार्तिक लिखने वाले कात्यायन एवं प्रातिशाख्यकर्ता कात्यायन को दो भिन्न–भिन्न व्यक्ति बतलाने में यह भी युक्ति है कि वार्तिककार 'वररूचि कात्यायन' के नाम में 'वररूचि वार्तिककार का मूल नाम था, जबकि 'कात्यायन' उनके गोत्र का नाम। इससे भी यह सिद्ध होता है कि वार्तिककार कात्यायन और प्रातिशाख्यकार कात्यायन अभिन्न न होकर वार्तिककार वररूचि 'कात्यायन' कात्यायन' गोत्रोत्पन्न होने के कारण कात्यायन के नाम से ही प्रसिद्ध हो गये, जिससे लोगों में भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो गयी।

अतः एतावत् यथामति शास्त्रावलोडनोपरान्त स्वकीयपरिनिष्ठित मत है कि वाजसनेयप्रातिशाख्यकार कात्यायन अनुतन्त्रकार से भिन्न है तथा पाणिनि से भी प्राचीनतर हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्कं० पु० ना० स्वं० 131/48–49.
2. स्कं० पु० ना० स्वं० 131/48–49.
3. का०सं० भू० 16 पृ०.
4. आश्व०सर्वा०भा०भू०.
5. प्र०परि० 1/1/1.
6. त्रिकाण्डशेषकोश 2/25.
7. महाभाष्य ३।२।३।।.
8. १।२।६६–७०।।.
9. अभिधान चिन्ताणि।। ३।८५२.
10. History of Ancient Sanskrit Literatire, P. 125.

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.- IV, Issues-38, YEAR- Oct.-Dec.2025

11. History of the ancient Sanskrit Literature, p. 127.
12. Commentry on Panini By Otto Bohtlingk, p. 17-18.
13. Indische Alterthumskunde] Voltt. P. 413.
14. Preface of Katyayan Pratisakhya, Edited by A. Wefer.
15. Panini his Place in Sanskrit Litrerature, Page 200, 205, 212–217.
16. Preface of the Nirukta, p. xi, iii Edited by Roth.
17. कात्यायन सर्वानुक्रमणी' 1/1.

*****